मत्स्य पुराण में वर्णाश्रम, व्रत, दान एवं तीर्थ-व्यवस्था: समसामयिक सामाजिक-आर्थिक संतुलन पर एक भारतीय शोध दृष्टि

डॉ० सिद्धार्थ सिंह
असि० प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर ,उत्तर प्रदेश

शोध सारांश

मत्स्य पुराण अष्टादश महापुराणों में प्राचीनतम, प्रामाणिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध ग्रंथ है| यह न केवल आध्यात्मिक चेतना और दार्शनिक मीमांसा का आदि स्रोत है, बल्कि तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं और लोक-कल्याणकारी नीतियों का एक जीवंत ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी है| प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य मत्स्य पुराण में वर्णित चार अंतर्संबंधित स्तंभों—वर्णाश्रम धर्म, व्रत-विधान, दान-महात्म्य और तीर्थ-व्यवस्था—का समसामयिक परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्रीय एवं आर्थिक विश्लेषण करना है| वर्तमान वैश्वीकरण, तीव्र औद्योगिकीकरण और भौतिकवादी युग में जहाँ एक ओर भीषण आर्थिक असमानता, मानसिक अवसाद और सामाजिक विखंडन बढ़ रहा है, वहाँ दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से पर्यावरणीय संकट गहरा गया है| ऐसे संक्रमण काल में, मत्स्य पुराण की यह चतुष्कोणीय व्यवस्था किस प्रकार एक संतुलित, समतामूलक, न्यायसंगत और लोक-कल्याणकारी समाज के निर्माण में मार्गदर्शक की भूमिका निभा सकती है, इस पर एक गंभीर भारतीय शोध दृष्टि से विमर्श किया गया है|

यह शोध आलेख इस स्थापना को पुष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय मनीषियों ने 'दान' और 'तीर्थ' के माध्यम से धन के विकेंद्रीकरण, 'वर्णाश्रम' के माध्यम से दायित्वबोध एवं श्रम के न्यायसंगत विभाजन, तथा 'व्रत' के माध्यम से उपभोग पर स्वेच्छिक नियंत्रण की जो दूरदर्शी सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा तैयार की थी, वह समसामयिक वैश्विक चुनौतियों, विशेषकर आर्थिक विषमता और असंतुलित विकास के समाधान में पूर्णतः सक्षम और आज भी उतनी ही प्रासंगिक है|

बीज शब्द:
मत्स्य पुराण, वर्णाश्रम धर्म, व्रत-मीमांसा, दान-महात्म्य, तीर्थ-व्यवस्था, सामाजिक-आर्थिक संतुलन, सतत विकास, भारतीय शोध दृष्टि|

भारतीय वास्तुकला, प्रागैतिहासिक भूगोल, संस्कृति और व्यावहारिक समाजशास्त्र का एक अमूल्य और अक्षय कोश 'मत्स्य पुराण' है| पौराणिक आख्यानों के अनुसार, जब समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है और अनियंत्रित उपभोक्तावाद तथा आर्थिक लोलुपता के कारण 'मत्स्य न्याय' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है—जहाँ बलवान और साधन संपन्न वर्ग निर्बल एवं साधनहीन वर्ग का शोषण करने लगता है—तब सामाजिक समरसता और आर्थिक संतुलन की पुनर्स्थापना के लिए सात्विक नियमों की अनिवार्यता बढ़ जाती है| भगवान विष्णु का मत्स्य अवतार वास्तव में इसी असंतुलन को समाप्त कर धर्म और न्याय की मर्यादा को पुनर्स्थापित करने का प्रतीक है| मत्स्य पुराण केवल पारलौकिक सुख, स्वर्ग या मोक्ष का अमूर्त विमर्श नहीं करता, बल्कि इहलौकिक जीवन को सुचारू, सुखी और संगठित बनाने के लिए वर्णाश्रम, व्रत, दान और तीर्थों की एक ऐसी व्यावहारिक श्रृंखला प्रस्तुत करता है जो समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक संसाधनों का न्यायोचित वितरण सुनिश्चित करती है|

प्राचीन भारतीय समाजशास्त्रियों ने मनुष्य की वृत्तियों और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सामाजिक ताने-बाने को बुना था। मत्स्य पुराण के अनुसार वर्णाश्रम व्यवस्था जन्म आधारित संकीर्णता या ऊंच-नीच की भावना से परे, विशुद्ध रूप से गुण, कर्म और व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित एक सुव्यवस्थित श्रम विभाजन की वैज्ञानिक पद्धति थी। इसका मुख्य उद्देश्य समाज के विभिन्न अंगों के भीतर प्रतिस्पर्धात्मक अंतर्विरोधों को समाप्त कर सहकारिता की भावना को विकसित करना था। समूची सृष्टि के इसी गुणात्मक और कर्मगत संतुलन को रेखांकित करते हुए पुराण का उद्घोष है:

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥"1

अर्थात्, चारों वर्णों की रचना गुण और कर्म के विभाजन के आधार पर की गई है। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि समाज का ढांचा जन्मना न होकर कर्म प्रधान था, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार सामाजिक और आर्थिक योगदान देने का अवसर मिलता था।

सामाजिक दायित्वों के निर्वहन के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन के क्रमबद्ध विकास के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के अंतर्गत आश्रम व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया। यह मानव जीवन की औसत आयु का एक ऐसा तार्किक और मनोवैज्ञानिक प्रबंधन है जो व्यक्ति को शुरुआत में ज्ञानार्जन, फिर सक्रिय आर्थिक सहभागिता और अंत में परमार्थ व समाज सेवा की ओर उन्मुख करता है। इन चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को रीढ़ की हड्डी माना गया है, क्योंकि यह आज के उत्पादक वर्ग और संपूर्ण अर्थव्यवस्था के भरण-पोषण की धुरी है। गृहस्थ के इसी आर्थिक और सामाजिक महत्व को प्रतिपादित करते हुए महर्षि वेदव्यास लिखते हैं:

"यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेन अन्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥"2

अर्थात्, जिस प्रकार अन्य तीनों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास) के लोगों का पोषण गृहस्थ द्वारा ही ज्ञान और अन्न से प्रतिदिन किया जाता है, इसलिए गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों में सबसे श्रेष्ठ और ज्येष्ठ है। वर्तमान युग का आधुनिक अर्थशास्त्र 'असीमित इच्छाओं और सीमित साधनों' के सिद्धांत पर काम करता है, जिसके दुष्परिणामस्वरूप समाज में अत्यधिक संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ी है और प्रकृति का अनियंत्रित दोहन हो रहा है। इसके विपरीत, मत्स्य पुराण की व्रत-व्यवस्था मनुष्य को आत्म-नियंत्रण, सात्विक जीवन शैली और 'न्यूनतम उपभोग' की शिक्षा देती है। यहाँ व्रत का अर्थ केवल भूखे रहना या भूखा मरना नहीं है, बल्कि यह मन, वाणी और कर्म की शुद्धि का एक उत्कृष्ट आर्थिक एवं आत्मिक अनुष्ठान है। जब व्यक्ति स्वेच्छा से उपभोग की वस्तुओं का त्याग करता है, तो समाज में वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ती है और मांग-आपूर्ति का संतुलन बना रहता है:

"इन्द्रियाणां निरोधस्तु व्रतमित्यभिधीयते।
तदेव नियताहारो लाघवात् सुखमश्नुते॥"3

अर्थात्, इंद्रियों का संयम ही वास्तव में व्रत कहलाता है। जो मनुष्य संतुलित आहार और संयमित जीवन जीता है, वह जीवन में हल्कापन और सच्चा सुख प्राप्त करता है।

मत्स्य पुराण का 'दान खंड' तो भारतीय अर्थशास्त्र और समाज कल्याण की नीतियों का चरमोत्कर्ष प्रस्तुत करता है। इस महापुराण में वर्णित 'षडाश महादान' की व्यवस्था प्राचीन काल की एक ऐसी अनूठी स्वैच्छिक कर-प्रणाली थी, जिसके माध्यम से समाज का अति-धनी वर्ग स्वेच्छा से और लोक-परलोक के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपनी संचित पूंजी का एक बहुत बड़ा भाग सार्वजनिक हित के कार्यों में लगा देता था। धन के इस सहज पुनर्वितरण से समाज में आर्थिक खाई गहरी नहीं हो पाती थी। ईमानदारी से अर्जित धन का समाज के प्रति क्या उत्तरदायित्व है, इसे स्पष्ट करते हुए पुराण कहता है:

"न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं कूपखननम्।
तड़ागं वापि यज्ञाश्च दानं च विपुलात्मकम्॥"4

"अनाथदीनकृपणास्तथैव च बुभुक्षिताः।
तर्पणीया प्रयत्नेन दानैर्नानाविधैस्तथा॥"5
अर्थात्, समाज के अनाथ, दीन, असहाय और भूखे लोगों को विशेष प्रयत्न करके विभिन्न प्रकार के आवश्यक दानों से संतुष्ट करना चाहिए।
इसके साथ ही, समाज में धन की प्रतिष्ठा तभी तक मानी गई है जब तक वह त्याग और उपभोग के संतुलन से युक्त हो। केवल धन का संचय करना और समाज के काम न आना उस धन के विनाश का कारण बनता है। मत्स्य पुराण दान की सात्विकता और उसके वास्तविक आर्थिक मूल्य को स्पष्ट करते हुए कहता है कि जो धन सत्पात्रों को दिया जाता है और जिससे समाज का पोषण होता है, वही वास्तव में स्थाई संपत्ति है:
"यद् ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने।
तच्छ्रेष्ठं धनमाहुस्ते शेषं कस्यापि रक्षति॥"6
अर्थात्, जो धन विशिष्ट सत्पात्रों को दिया जाता है तथा जिसका उपयोग प्रतिदिन स्वयं के और आश्रितों के सात्विक भरण-पोषण में होता है, श्रेष्ठ मनीषी उसी को उत्तम धन कहते हैं। इसके अतिरिक्त बचा हुआ धन केवल दूसरों (चोरों या अन्य के) के लिए सुरक्षित मात्र रखा जाता है।
मत्स्य पुराण में भारतवर्ष की पवित्र नदियों, पर्वतों और वनों का जो भौगोलिक वर्णन मिलता है, वह उसके अद्भुत पर्यावरण-चेतना और क्षेत्रीय नियोजन को दर्शाता है। नर्मदा, प्रयाग, काशी और गया जैसे तीर्थों का विस्तृत महात्म्य केवल धार्मिक पुण्य अर्जित करने का जरिया नहीं था, बल्कि यह प्राचीन भारत में पर्यटन अर्थशास्त्र और अंतर्क्षेत्रीय व्यापार का एक अत्यंत सुदृढ़ माध्यम था। जब देश के एक कोने से कोई यात्री दूसरे सुदूर कोने में स्थित तीर्थ की यात्रा पर जाता था, तो मार्ग में परिवहन, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग, स्थानीय सराय और छोटे व्यापारियों की आजीविका चलती थी। यह संपूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने की सांस्कृतिक विधा थी:
"गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले चैव पुनर्जन्म न विद्यते॥"7
अर्थात्, गंगाद्वार (हरिद्वार), कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत और कनखल तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य के पाप धुल जाते हैं और उसे परम गति मिलती है। यह श्लोक उन विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों के महत्व को दर्शाता है जो सामाजिक मिलन बिंदु थे। परंतु, केवल नदियों में स्नान कर लेने या पहाड़ों की खाक छानने से ही जीवन धन्य नहीं होता। मत्स्य पुराण बाह्य कर्मकांडों से ऊपर उठकर 'मानस तीर्थ' अर्थात आंतरिक पवित्रता को सर्वोपरि मानता है। जब तक मनुष्य का आचरण शुद्ध नहीं होगा, जब तक समाज में पारस्परिक क्षमा, सत्य और दया की भावना नहीं होगी, तब तक बाह्य व्यवस्थाएं निष्प्रभावी रहेंगी। सामाजिक नैतिकता और मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ करने के लिए मानस तीर्थ की महत्ता प्रतिपादित करते हुए ऋषियों ने लिखा है:
"सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च॥"8
अर्थात्, सत्य ही वास्तविक तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इंद्रियों का नियंत्रण तीर्थ है, समस्त जीवों पर दया करना तीर्थ है और व्यवहार में सरलता रखना ही सबसे बड़ा तीर्थ है।
समसामयिक वैश्विक परिदृश्य में जहाँ समाज तीव्र वर्ग-संघर्ष, भ्रष्टाचार और अनैतिक तरीकों से रातों-रात अमीर बनने की अंधी दौड़ से ग्रसित है, वहाँ मत्स्य पुराण का नैतिक और आर्थिक अनुशासन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। पुराण स्पष्ट रूप से चेतावनी देता है कि अधर्म, शोषण, कर-चोरी या दूसरों का हक मारकर कमाया गया धन भले ही तात्कालिक रूप से व्यक्ति को वैभवशाली और शक्तिशाली बना दे, लेकिन ऐसा अनैतिक विकास अंततः समाज और व्यक्ति दोनों को विनाश के गर्त में ले जाता है:
"अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥"9

अर्थात्, अधर्म और अन्याय से मनुष्य अस्थायी रूप से समृद्ध होता है, अपना हित भी देखता है और शत्रुओं पर विजय भी पा लेता है, किंतु अंततः वह समूल (जड़ सहित) नष्ट हो जाता है।

आज संपूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय असंतुलन के विनाशकारी दौर से गुजर रहा है। प्राचीन काल में ही हमारे ऋषियों ने समझ लिया था कि प्रकृति के बिना मानव का अस्तित्व संभव नहीं है। मत्स्य पुराण में जल संरक्षण और वृक्षारोपण को जो आध्यात्मिक और सामाजिक महत्व दिया गया है, वह आज के पर्यावरणीय अर्थशास्त्र की मूल आत्मा है। एक वृक्ष को 10 उत्तम पुत्रों के समान घोषित करके पुराण ने वनस्पति जगत के प्रति अत्यंत मानवीय और आत्मीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है:

"दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥"10

अर्थात्, दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब होता है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र होता है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।

किसी भी राज्य की अर्थव्यवस्था और न्याय व्यवस्था का सीधा संबंध वहां के शासन और कर नीति से होता है। मत्स्य पुराण में राजा और प्रशासन के लिए जो दिशा-निर्देश दिए गए हैं, वे आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारों के लिए अनुकरणीय हैं। राजा को कर वसूलते समय प्रजा पर अत्याचार नहीं करना चाहिए। कर नीति की तुलना उपवन के माली से करते हुए पुराण समझाता है कि जैसे माली वृक्ष को नुकसान पहुंचाए बिना केवल उसके पके हुए फल चुनता है, वैसे ही राजा को प्रजा की समृद्धि को बिना चोट पहुंचाए न्यायोचित कर लेना चाहिए, न कि कोयला बनाने वाले की तरह पूरे वृक्ष को ही काट डालना चाहिए:

"यथा फलसमादात्री मालाकारो नृपो भवेत्।
न च कोइलाकारो यथार्थं धनसंग्रहे॥"11

अर्थात्, राजा को कर संग्रह करते समय माली की भांति व्यवहार करना चाहिए जो केवल फल चुनता है, न कि उस कोयला बनाने वाले की तरह जो अधिक लकड़ी के लालच में पूरे पेड़ को ही जलाकर भस्म कर देता है। शासन का परम और अंतिम कर्तव्य अपनी प्रजा को भयमुक्त वातावरण और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना है। जब राज्य का शासन तंत्र धर्मपरायण, पारदर्शी और जन-हितैषी होता है, तभी समाज का प्रत्येक नागरिक बिना किसी भय के अपनी पूरी क्षमता से राष्ट्र निर्माण में योगदान दे पाता है। राजा की इसी कर्तव्यनिष्ठा को रेखांकित करते हुए पुराण कहता है:

"रक्षणाद् धर्मराजस्य प्रजा भवति निर्भया।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन राजा धर्मपरो भवेत्॥"11

अर्थात्, जब राजा धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करता है, तब प्रजा सर्वथा भयमुक्त होकर जीवन जीती है। इसलिए राजा को संपूर्ण प्रयत्न करके सदैव धर्म मार्ग पर ही चलना चाहिए।

मत्स्य पुराण की इन चारों व्यवस्थाओं का यदि समेकित रूप से मूल्यांकन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विचारकों ने एक ऐसे समग्र मॉडल की कल्पना की थी जिसमें भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक उन्नति एक-दूसरे की विरोधी नहीं, बल्कि पूरक थीं। आज के पूंजीवादी मॉडल में धन का संकेंद्रण कुछ गिने-चुने हाथों में हो जाता है, जिससे समाज में भयंकर असंतोष, वर्ग-विद्वेष और मानसिक व्याधियां जन्म ले रही हैं। पश्चिमी अर्थशास्त्र जहाँ केवल सकल घरेलू उत्पाद और उपभोग के आंकड़ों को ही समृद्धि का पैमाना मानता है, वहीं भारतीय शोध दृष्टि मानव जीवन की समग्र प्रसन्नता, आंतरिक संतोष और पर्यावरण के साथ सह-अस्तित्व को वास्तविक प्रगति के रूप में परिभाषित करती है। इस परिप्रेक्ष्य में, मत्स्य पुराण की दान और तीर्थ-व्यवस्था कोई थोपी गई कर-प्रणाली नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना जागृत करने की एक ऐसी अनूठी विधा है जो स्वैच्छिक त्याग और सांस्कृतिक पर्यटन के माध्यम से शहरी केंद्रों की संचित पूंजी की धारा को स्वतः ही समाज के निचले, ग्रामीण और सुदूर क्षेत्रों की ओर मोड़ देती है। यह आर्थिक प्रवाह समाज में संसाधनों का एक सहज और अहिंसक पुनर्वितरण सुनिश्चित करता है।

इस व्यवस्था की गहनता को समझते हुए यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि आधुनिक 'कल्याणकारी राज्य' की नीतियां जहाँ प्रशासनिक तंत्र और भारी करों के माध्यम से संसाधनों को पुनर्वितरित करने का प्रयास करती हैं, वहाँ भ्रष्टाचार और लालफीताशाही के कारण वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते। इसके विपरीत, मत्स्य पुराण का भारतीय प्रतिदर्श व्यक्ति के 'आंतरिक दायित्वबोध' को जाग्रत करता है। जब एक धनी व्यक्ति महादान करता है, या जलाशयों का निर्माण करवाता है, तो वह किसी दंडात्मक कानून के डर से नहीं, बल्कि सामाजिक ऋण से मुक्त होने की सात्विक भावना से ऐसा करता है। यही कारण है कि प्राचीन भारत में राज्य पर निर्भर रहे बिना भी समाज के जल संकट, भूख़मरी और चिकित्सा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का निराकरण समाज के संभ्रांत वर्ग द्वारा स्वतः ही कर दिया जाता था। यह व्यवस्था आर्थिक विकेंद्रीकरण को एक आध्यात्मिक संस्कार में बदल देती है, जिससे समाज में 'वर्ग-संघर्ष' के स्थान पर 'वर्ग-सहयोग' की भावना सुदृढ़ होती है।

इसी प्रकार, आधुनिक समाज जहाँ अत्यधिक उपभोग की अंधी होड़ और प्रदर्शनकारी जीवन शैली में अपनी मानसिक शांति खो चुका है, वहाँ व्रत और मानस-तीर्थ की अवधारणाएं मनुष्य के भीतर आत्म-नियंत्रण, न्यूनतम संचय और नैतिक दायित्वबोध की स्थापना करती हैं। यह दर्शन स्पष्ट करता है कि समरस समाज की स्थापना केवल कानूनी बाध्यताओं या कठोर शासकीय नीतियों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए व्यक्ति के अंतःकरण का शुद्ध होना और उसमें लोक-कल्याण की सात्विक भावना का जाग्रत होना अनिवार्य है। अतः मत्स्य पुराण का यह प्राचीन चतुष्कोणीय मॉडल वर्तमान आर्थिक विषमता को पाटने, पारिस्थितिकीय संतुलन की रक्षा करने और एक न्यायपूर्ण, शोषण-मुक्त व मानसिक रूप से शांत वैश्विक समाज के निर्माण में एक अत्यंत सुदृढ़, व्यावहारिक और शाश्वत विकल्प प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र के विस्तृत अध्ययन के आधार पर यदि बहुत ही सरल और व्यवस्थित रूप से बात की जाए, तो मत्स्य पुराण में बताए गए नियम—जैसे समाज में ज़िम्मेदारियों का बँटवारा, ख़ुद पर नियंत्रण, ख़ुले दिल से मदद करना और तीर्थ यात्राएँ—कोई पुराने ज़माने के अंधविश्वास या बेकार के कर्मकांड नहीं हैं। वास्तव में, ये समाज को सुख़ी और संतुलित रख़ने के बहुत ही व्यावहारिक तरीके हैं। आज के समाज में जहाँ अमीर और गरीब की ख़ाई बहुत चौड़ी हो गई है, और इंसान पैसों की अंधी दौड़ में मानसिक शांति खो चुका है, वहाँ मत्स्य पुराण का यह नज़रिया बेहद काम का साबित होता है। यह व्यवस्था समाज में श्रम का सम्मान बढ़ाती है और आपसी भाईचारे की नींव रख़ती है। वर्णाश्रम व्यवस्था ऊंच-नीच से दूर रहकर समाज को आपसी सहयोग और गुणों के आधार पर कार्य करना सिख़ाती है, जिससे आपसी लड़ाइयाँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार व्रत-विधान मनुष्य को अपनी बेकाबू इच्छाओं पर नियंत्रण रख़ना सिख़ाता है। यह सादगीपूर्ण जीवन शैली पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना संसाधनों के टिकाऊ उपयोग पर बल देती है। इसके साथ ही, दान की सात्विक परंपरा समाज के संपन्न वर्ग से पूंजी को आदरपूर्वक ज़रूरतमंदों तक पहुँचाने का एक गरिमापूर्ण साधन है, जो बिना किसी शासकीय दबाव के समाज में आर्थिक विषमता को पाटने का काम करती है। सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देने वाली तीर्थ-व्यवस्था पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने की सांस्कृतिक विधा है और ग्रामीण तथा दूर-दराज के क्षेत्रों में स्थानीय रोज़गार व आर्थिक सशक्तिकरण को मजबूत करती है।

अतः आज के नीति-निर्माताओं और अर्थशास्त्रियों को यदि भुख़मरी, सामाजिक अशांति और पर्यावरण संकट जैसी वैश्विक समस्याओं का शाश्वत समाधान ख़ोजना है, तो उन्हें केवल पश्चिमी भौतिकवादी दृष्टिकोण पर निर्भर रहने के बजाय भारत के इस समृद्ध पौराणिक ज्ञान को आधुनिक संदर्भों के अनुरूप ढालकर अपनी नीतियों में शामिल करना होगा। मत्स्य पुराण का यह व्यावहारिक संदेश आज के समय में पूरी मानवता के भले के लिए सबसे ज़रूरी और अचूक समाधान प्रस्तुत करता है, यही इस शोध का अंतिम और मूल परिणाम है।

सन्दर्भ

1 मत्स्य पुराण, अध्याय 4, श्लोक 42, गीताप्रेस, गोरख़पुर संस्करण।
2 वही, अध्याय 52 (गृहस्थधर्म निरूपण), श्लोक 22, गीताप्रेस, गोरख़पुर संस्करण।
3 वही, अध्याय 61 (व्रत उपवास विधि), श्लोक 5, चौख़म्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी संस्करण।

4 वही, अध्याय 204 (जलाशयोत्सर्ग विधि), श्लोक 6, गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण।
5 वही, अध्याय 274 (तुलापुरुषादि महादान कीर्ति), श्लोक 15, आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पुणे संस्करण।
6 वही, अध्याय 205 (दान प्रशंसा प्रसंग), श्लोक 12, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी संस्करण।
7 वही, अध्याय 186 (नर्मदा एवं गंगा महात्म्य), श्लोक 10, गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण।
8 वही, अध्याय 68 (स्नान एवं मानस तीर्थ वर्णन), श्लोक 34, आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पुणे संस्करण।
9 वही, अध्याय 210 (राजधर्म एवं सदाचार प्रसंग), श्लोक 22, गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण।
10 वही, अध्याय 154 (वृक्षायुर्वेद एवं तड़ाग विधि), श्लोक 512, गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण।
11 वही, अध्याय 215 (राजकोष एवं कर नीति), श्लोक 85, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी संस्करण।
12 वही, अध्याय 215 (राजधर्म अनुपालन), श्लोक 92, गीताप्रेस, गोरखपुर संस्करण।

सन्दर्भ सूची

1. वेदव्यास (महर्षि); मत्स्य पुराण (मूल श्लोक एवं हिंदी व्याख्या), गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण 2018.
2. काणे, पाण्डुरंग वामन; धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग 1 से 5), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, संस्करण 2005.
3. उपाध्याय, बलदेव; पुराण विमर्श, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2012.
4. शर्मा, रामशरण; प्राचीन भारत में सामाजिक और आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016.
5. मिश्र, रामचंद्र; पुराणों में वर्णित सामाजिक व्यवस्था एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, के. पी. जायसवाल शोध संस्थान, पटना, संस्करण 2014.
6. झा, द्विजेंद्र नारायण; प्राचीन भारत का इतिहास (आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य), दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2011.
7. मत्स्य महापुराणम् (संस्कृत पाठ); आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पुणे, संस्करण 1981.
8. मत्स्य पुराण (सटीक); चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, संस्करण 2003.